श्री हरिनाम

श्रीचैतन्य मठ
श्रीधाम मायापुर, नदिया

श्रीश्रीगुरु गौरांगौ जयतः

नित्य सेवित विग्रह : राधागोविन्द महाप्रभु

श्री हरिनाम

श्री भक्ति बिनोद ठाकुर

श्री हरिनाम

नाम: चिन्तामणि: कृष्णश्चैतन्य-रसविग्रह: ।
पुर्ण शुद्ध: नित्यमुक्त अभिन्नत्वामनामिना ।।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

हिन्दी अनुवादक
श्री अशोक मेहरा

श्रीचैतन्य मठ
श्री धाम मायापुर, नदिया

श्रीहरिनाम

श्रीधाम मायापुर के आकर मठराज श्रीचैतन्य मठ के त्रिदन्डि श्रीभक्ति प्रज्ञान यति महाराज (महामंत्री और आचार्य) के द्वारा प्रकाशित

श्रीगौराब्द – ५१८ संवत्- २००५

महानाम

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे"।।

"श्रीनाम द्वारा मूर्ति की सेवा होती है, –
चैतन्य के द्वारा चैतन्य की सेवा होती है"।

श्रील प्रभुपाद

श्रीहरिनाम

श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर का उपदेश।

परमेश्वर की कृपा के सिवा इस भवसागर को पार करने का अन्य कोई उपाय नहीं है। चेतन जीव यद्यपि जड़ पदार्थ से श्रेष्ठ है, फिरभी स्वभावत: दुर्बल एवं पराधीन है। एकमात्र परमेश्वर ही जीव के नियन्ता, रक्षक एवं उद्धारक हैं। जीव एकदेशीय (अणु) चैतन्य होने के कारण परम चैतन्य परमेश्वर का अधिनस्थ एवं सेवक है। परम चैतन्य परमेश्वर ही जीव के एकमात्र आश्रय हैं। यह जड़ जगत माया द्वारा निर्मित है। इस जगत में जीव का निवास कारावास में सजा भुगत रहे कैदी की तरह है। भगवद्कृपा से विमुख जीव स्वभावत: माया के आश्रय में जाता है। भगवद् साक्षात्कार के बिना जीव को माया के संसर्ग से मुक्त करने का कोई विकल्प नहीं है। भगवान के अनुग्रह से विमुख जीव मायाबद्ध एवं भगवान का अनुगत जीव ही मुक्त है।

मायाबद्ध जीव क्रमश: साधना के द्वारा भगवत् कृपा लाभ कर माया के बंधन को तोड़ने में समर्थ हो जाता है। महर्षियों ने सुचिन्तित रूप से कर्म, ज्ञान एवं भक्ति को साधन त्रयी के रूप मे प्रतिष्ठित किया है।

वर्णाश्रम धर्म, यज्ञ, तपस्या, दान, व्रत इत्यादि विभिन्न कर्मो का शास्त्र में उल्लेख किया गया है। इन कर्मो के भिन्न-भिन्न फल भी उन शास्त्रों में वर्णित हैं। इन फलों पर पृथक्-पृथक् विचार करने पर देखा जाता है कि स्वर्ग सुख, सांसारिक सुख, सामर्थ्य, रोगशान्ति एवं उच्चकार्य में अवकाश – ये ही प्रधान फल हैं। उच्चकार्य में अवकाश रूपी फल को पृथक् कर देने से बाकी सारे फल मायाजन्य प्रतीत होते हैं। ये सभी फलसमुदाय नश्वर मरण धर्मी हैं। नियति के कालचक्र में ये सब नष्ट प्राय हो जाते हैं। इन सभी फलों के द्वारा माया पाश का विनष्ट होना तो दूर की बात है, उल्टे जागतिक वासना और दृढ़ हो जाती है। यदि उच्चकार्य (भगवदाराधन) भी ठीक प्रकार से नहीं कि जाय, तो इसका भी फल निरर्थक ही होता है। श्रीमद् भागवत में कहा है :–

धर्म: स्वनुष्ठित: पुंसां विष्वक्सेनकथासु य:।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव ही केवलम्।।
(भागवत १-२-८)

अर्थात् मानव द्वारा अनुष्ठित स्वधर्म के फलस्वरूप भगवान् विष्वक्सेन की कथाओं, कीर्तनों मे रति उत्पन्न नहीं कर पाता, तो उस धर्मानुष्ठान से कोई लाभ नहीं। वह केवल श्रम मात्र ही है।

वर्णाश्रम धर्म का मूल उद्देश्य यही है कि अपने-अपने स्वभाव एवं रुचि के अनुसार सांसारिक एवं शारीरिक कर्म के सम्यक् विभाग द्वारा अनायास संसार एवं शरीर यात्रा का निर्वाह हो सके। तभी तो उसे हरिकथा एवं सत्संग के लिए अवसर प्राप्त होंगे। यदि कोई व्यक्ति उत्तम रूप से वर्णाश्रम धर्म का पालन करके भी हरिचर्चा के द्वारा हरिकथा में आसक्ति लाभ नहीं कर सका, तब वह स्वधर्मानुष्ठान वृथा श्रम मात्र ही है। काम्य कर्मानुष्ठान से भवसिन्धु पार नहीं किया जा सकता।

ज्ञानचर्चा जीव को उच्चतर गति लाभ के साधन के रूप में निरूपित है जिसका फल है आत्मशुद्धि। आत्मा जड़त्व से विलक्षण चेतन है, लेकिन इस तथ्य की विस्मृति से जीव चेतन होकर भी जड़त्व के पाश मे बंध जाता है एवं स्थूल कर्ममार्ग पर अग्रसर हो जाता है। केवल ज्ञानचर्चा के द्वारा ही इस तत्व की प्रतीति होती है कि मैं जड़ नहीं चित् स्वरूप हूँ। ऐसा ज्ञान नैष्कर्म्य के नाम से अभिहित है। फलस्वरूप चेतन तत्व में चेतन पदार्थों के आस्वाद की भी परिसमाप्ति हो जाती है। इस उच्च अवस्था को 'आत्माराम' कहा गया है। परन्तु जैसे चिदास्वादन रूपा चित्प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, तब नैष्कर्म्य की स्थिति नहीं रहती। इसी कारण नारद जी ने कहा है :–

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जित
न शोभते ज्ञानमलं निरंजनम्।।
(भा० १/५/२२)

अच्युत (भगवान) की भावना से रहित नैष्कर्म्य रूप निरंजन ज्ञान भी शोभनीय नहीं

है। यदि कहो कि तब क्या होता है ? अतएव श्री भागवत में वर्णित है :–

आत्मारामश्च मुनयो, निर्गता अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत गुणो हरि:।।
(भा० १/७/१०)

अर्थात् परमचैतन्य श्रीहरि में एक असाधारण गुण है जो समस्त जड़त्व से मुक्त आत्मस्वरूप में रमण करने वाले मुनियों को भी अपनी ओर आकर्षित कर अपनी भक्ति रूपी कार्य में प्रवृत्त कर देते हैं। अतएव कर्म सदवकाश प्रदान कर ज्ञान के नैष्कर्म्यरूप का त्याग कराकर जब भगवान भक्तिसाधन में जीव को नियुक्त करते हैं, तभी कर्म और ज्ञान भक्ति साधन के अंग के रूप में जाने जाते हैं। इन दोनों की अलग-अलग साधन का अंग होने में कोई उपयोगिता नहीं है। इसी कारण मात्र भक्ति को ही साधन कहा गया है। कर्म और ज्ञान कभी-कभी भक्ति के आश्रयभूत होकर साधन बन जाते हैं। लेकिन भक्ति तो स्वयमेव साधनरूपा है; जैसा कहा गया है :–

"न साधयते मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्थमोर्जिता।।"
(भागवत - ११/१४/२०)

हे उद्धव, कर्मयोग, सांख्ययोग, वर्णाश्रम धर्म वेद पाठ, तपस्या या वैराग्य – आदि साधनों से मैं जितना प्राप्त नहीं हूँ उससे ज्यादा भक्ति के द्वारा प्राप्त होता हूँ। भगवान की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए भक्ति से इतर कोई अन्य साधन नहीं है। साधन भक्ति, श्रवण, कीर्तनादि रूप से नवधा है। इनमें श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण ही प्रधान अंग है। भगवान, के नाम, रूप गुण लीला – इन चार विषयों का ही श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण किया जाता है। इन में नाम ही सर्वबीजरूप है। अतएव हरिनाम ही समस्त उपासना का मूल है। शास्त्रों मे कहा गया है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।
(वृहन्नारदीय पुराण)

इस कलिकाल में कृष्ण का अवतार ही नाम-रूपात्मक है। नाम से ही पूरे जगत का निस्तार होता है। प्रचूरता के अर्थ में हरेर्नाम की तीनबार पुनरूक्ति है। जड़ लोक को बताने के लिए 'एवं' पद का प्रयोग किया गया है। केवल शब्द निश्चयकरण के लिए प्रयुक्त है। इसके द्वारा ज्ञान-योग-तपादि साधनों का निवारण किया गया है। जो इसके अतिरिक्त कुछ अन्य समझता है, उसका निस्तार नहीं है। तीन बार 'न'कार का प्रयोजन इसी में है कि केवल मात्र हरिनाम ही साधन रूप है। कलिकाल में भक्ति के सिवा जीव की अन्य कोई गति नहीं है। 'कलिकाल' शब्द का तात्पर्य सभी कालों में है। सभी कालों में हरिनाम आश्रय के बिना जीव की कोई गति नहीं है। विशेष रूप से कलिकाल में अन्य मन्त्रादि साधन कठिन होने के कारण केवल हरिनाम ही सहज एवं एकमात्र अवलम्बन योग्य है। इसी कारण यह अन्य साधनों की अपेक्षा ज्यादा सामर्थ्यवान है।

हरिनाम क्या है? इस संबंध में पद्म पुराण में बताया गया है। यथा —

नामचिन्तामणि: कृष्णचैतन्यरसविग्रह: ।
पूर्ण: शुद्धो नित्यमुक्तो भिन्नत्वनामनामिना।।
(श्री भक्ति रसामृत सिन्धु)

[कृष्ण नाम चिन्तामणि स्वरूप, स्वयं कृष्ण चैतन्य रस विग्रह, पूर्णमायातीत शुद्ध एवं नित्यमुक्त है। क्योंकि नाम और नामी में कोई भेद नहीं है।]

इस श्लोक की व्याख्या में श्रील जीव गोस्वामी नेलिखा है – "एकमेव सच्चिदानन्द स्वरूपं तत्वं द्विधाविर्भूतमित्यर्थ: ।" श्रीकृष्ण तत्व अद्वय सच्चिदानन्दरूप है। उसी का दो प्रकार से आविर्भाव हुआ है। एक नामरूप से अर्थात् श्रीकृष्ण नाम एवं नामी रूप से अर्थात् श्री कृष्ण विग्रह। इसका मूल अभिप्राय यही है कि श्री कृष्ण सर्वशक्तिमान हैं। जो पुरुष शक्तिमान होता है उसका समस्त प्रकाश ही उसका शक्तिरूप होता है। शक्ति के दर्शन के द्वारा ही कृष्ण रूप प्रकाशित होता है एवं आह्वय (बुलाने) प्रभाव द्वारा कृष्णनाम विज्ञापित होता है। अतएव कृष्णनाम-चिन्तामणि स्वरूप, कृष्णस्वरूप एवं चैतन्य-रस-विग्रह-स्वरूप है। श्रीनाम सर्वदा

पूर्णस्वरूप अर्थात् विभक्ति योग द्वारा 'कृष्णाय' 'नारायणाय' आदि मंत्रों के निर्माण की अपेक्षा नहीं रखता। कृष्ण नाम उच्चारण करने मात्र से चित्त में कृष्ण तत्त्व का प्राकट्य होता है। नाम सर्वदा विशुद्ध अर्थात् जड़ तत्व से परे है। नाम केवल चैतन्य रसमात्र है। नाम सर्वदा मुक्त, कभी भी जड़ पदार्थ से प्रादुर्भूत नहीं है। जिन्होंने नाम रस का आस्वाद लिया है, केवल वे ही इस तत्व को समझने में समर्थ हैं। जो नाम में जड़त्व का आरोप करते हैं, वे इस रस की अनुभूति नहीं कर सकते हैं। यदि कोई कहे कि हम जिस नाम का नित्य उच्चारण करते हैं, वे तो जड़ अक्षरों के आश्रय में ही तो प्रतिष्ठित हैं। अतएव नाम में जड़ाश्रय तो है ही इसे नित्यमुक्त एवं शुद्ध वस्तु कैसे बोल सकते हैं? इस तर्काभास को निरस्त करते हुए श्री रूप गोस्वामी लिखते हैं :–

अत: श्रीकृष्णनामादि न भवेद्ग्राह्यमिन्द्रियै: ।
सेवान्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेवस्फुरत्यद: ।।
(श्री भक्ति रसामृत सिन्धु)

[अतएव श्रीकृष्ण का नाम प्राकृत इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है। सेवा के प्रति उन्मुख अवस्था में उनके नाम-रूप गुण-लीलादि भक्तों के अप्राकृत इन्द्रियों में प्रकाशित होते है।]

केवल प्रकृति जन्य वस्तु ही इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य है। कृष्ण नाम अप्राकृत होने से ही सामान्य इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं है। फिर भी जो नाम जिह्वा पर प्रकाशित होता है, वह केवल आत्मा का अप्राकृत आनन्द एवं तदुपयोगी इन्द्रियों की स्फुरणा मात्र है। भक्त जिस समय आत्मा के अप्राकृत जिह्वा पर कृष्णनाम उच्चारण करता है तब यह उच्चारित परम तत्व स्थूल प्राकृत जिह्वा पर आविर्भूत होकर नृत्य करने लगता है। आनन्द के द्वारा हास्य, स्नेह द्वारा घर्षण, प्रीति द्वारा नृत्य जिस तरह प्राकृत रस से इन्द्रिय पर्यन्त व्याप्त होता है, उसी प्रकार अप्राकृत रस से कृष्ण नाम का जिह्वा पर व्याप्ति होती रहती है। प्राकृत जिह्वा पर कृष्ण नाम का प्रादुर्भाव नहीं होता है। साधना काल में नाम का जो अभ्यास होता है, वह वास्तविक अभ्यास नहीं बल्कि नामाभास ही बोला जा सकता है। नामाभास से ही क्रमश: अप्राकृत नाम से रुचि

उत्पन्न होती है। वाल्मीकि एवं अजामिल के जीवन चरित्र का अवगाहन करने पर उस तथ्य का सहज ज्ञान हो जाता है।

जीव जबतक अपराध में आसक्त रहता है, तब तक उसकी रुचि नाम में नहीं होती। जो जीव अपराध शून्य होकर कृष्ण नाम ग्रहण करता है, उसी के हृदय में चैतन्य रस विग्रह रूप अप्राकृत हरिनाम का प्रादुर्भाव होता है। अप्राकृतिक नामोदय होने से हृदय उत्फुल्ल, आंखों में प्रेमाश्रु एवं देह में सात्विक विकार प्रकट होने लगते हैं। इस रूप का वर्णन श्रीमद्भागवत में किया गया है :-

तदश्मसारं हृदयं तवेदं यद्ग्राह्यमानैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेनाथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररूहेषु हर्षः।।
(भागवत २/३/२४)

जीव जब हरिनाम का आश्रय लेता है, तब उसके हृदय में सात्विक विकार उत्पन्न होते हैं, आंखों में अश्रुधारा बहने लगती है एवं रोमांच हो जाता है। जो कृष्ण नाम का उच्चारण करके भी उस रूप का अनुभव नहीं करते, वे अपराध ग्रस्त पाषाण हृदय हैं।

निरपराध होकर ही हरिनाम ग्रहण करना साधक के लिये नितांत कर्तव्य है। अतएव अपराधों से मुक्त होने के लिए अपराध कितने एवं कैसे हैं, यह जानना आवश्यक है। हरिनाम के सम्बन्ध में दस प्रकार के अपराध, शास्त्रों में वर्णित हैं। यथा – (१) साधुनिन्दा (२) भगवान से पृथक् शिव आदि देवता में स्वतंत्र भगवद् बुद्धि (३) गुरु-अवज्ञा (४) सत्शास्त्र निन्दा (५) हरिनाम महिमा को केवल अर्थवाद समझना (७) नामाश्रय करके पापाचरण (८) अन्य शुभ कर्मों को नाम के बराबर दर्जा देना (९) अश्रद्धावान को नामोपदेश करना (१०) नाम श्रवण कर उसके माहात्म्य में अविश्वास।

साधु भक्तगणों के प्रति अश्रद्धा भाव रखना एवं उनके चरित्र की निन्दा करना हरिनाम के प्रति अपराध है। अतएव जो नामाश्रयी हैं, उन्हें वैष्णवों के प्रति अवज्ञा का भाव सर्वथा त्याग देना चाहिए। वैष्णों के कार्यों में संदेह होने पर भी सहसा

उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए। उनके तात्पर्य का अनुसंधान करना चाहिए। साधुओं के प्रति श्रद्धाभाव परमावश्यक है।

भगवान की अपेक्षा शिव आदि देवता को भिन्न अस्तित्व वाला समझना अपराध है। भगवद् तत्व एक एवं अद्वितीय है। भगवान विष्णु के अतिरिक्त शिव आदि अन्य देवताओं का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। इन देवी-देवताओं को भगवान का गुणावतार एवं भगवद्भक्त रूप में ग्रहण करने से नामापराध नहीं होता। जो महादेव को पृथक् देवता समझ कर विष्णु की पृथक् पूजा करता है, वह नामापराधी है। वे विष्णु और शिव दोनों के प्रति अपराधी हैं। नामाश्रयी भक्त को भेद ज्ञान का त्याग करना आवश्यक है।

गुरु की अवज्ञा भी नामापराध है। जिनकी कृपा से भगवत् तत्व का ज्ञान होता है, वे आचार्य रूपी भगवान हैं। उनमें दृढ़ भक्ति करना एवं हरिनाम में अचल श्रद्धा करणीय है।

सत् शास्त्रों की निन्दा करना अपराध है। अनादि वेदशास्त्र एवं इनके अनुवर्ती स्मृति शास्त्रों - जिनसे भागवत् धर्म का ज्ञान होता है उन्हीं शास्त्रों की निन्दा करना हरिनामापराध है। वेदादि शास्त्रों में सर्वत्र हरिनाम के माहात्म्य का वर्णन है।

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते।।
(हरिवंश पुराण)

[वेद, रामायण, पुराण एवं महाभारतादि ग्रंथों के आदि मध्य एवं अंत में सर्वत्र श्रीहरि की महिमा का वर्णन है।]

इस प्रकार सत्शास्त्रों की निन्दा करने से नाम में प्रीति कैसे होगी? कई लोगो का मानना है कि शास्त्रों में हरिनाम का माहात्म्य जो वर्णित है, वह केवल नाम की प्रशंसा मात्र है। जिनकी ऐसी भावना है, वे नामापराधी हैं। उनकी हरिनाम में प्रीति नहीं होती। अन्यान्य कर्मकान्डों में रुचि उत्पन्न करने के लिए जिस प्रकार फलश्रुति कही गई है, उसी प्रकार वैसी भावना जो नाम माहात्म्य में करता है, वह अतिशय

दुर्भाग्यशाली है। जो सौभाग्यशाली हैं, वे ऐसी भावनाओं में विश्वास हीं रखते।

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्।।
(भागवत – २-१-११)

निर्विद्यमान, अकुतोभयाभिलाषी योगियों के लिए एकमात्र कर्त्तव्य हरिनाम कीर्तन है – ऐसा जो विश्वास रखते हैं, उन्हें ही हरिनाम की प्राप्ति होती है।

नामाभास एवं नाम में भेद नहीं जानकर कई लोग ऐसा मानते हैं कि नाम अक्षरमय हैं। अतएव श्रद्धाविदी भाव से भी ग्रहण करने से फल होगा। वे अजामिल का इतिहास एवं "सांकेत्यं परिहास्यं वा....." इत्यादि शास्त्र वचनों का उदाहरण देते हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि नाम चैतन्य रस विग्रह इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है। निरपराध होकर नाम ग्रहण करने से ही इसका फलोदय होता है। श्रद्धाविहीन लोगों का नामोच्चारण का फल यही है कि ये बाद में श्रद्धापूर्वक नाम ग्रहण कर सकेंगे। अतएव दुष्टतापूर्वक नाम में अर्थवाद की भावना कर जो इसे अक्षर रूप कर्मकाण्ड का अंग समझते हैं, वे बहिर्मुखी एवं नामापराधी हैं। वैष्णव जन इस नामापराध को यत्नपूर्वक त्याग देते हैं।

कई लोग ऐसा मानते हैं कि हरिनाम का आश्रय ग्रहण कर हमने समस्त पापों की औषधि प्राप्त कर ली है। इस विश्वास के वशीभूत होकर वे प्रवंचन, ठगी, लम्पटता इत्यादि पापाचरण कर पुनः हरिनाम उच्चारण कर इन सभी पापों को दूर करने की चेष्टा करते हैं। ये सब नामापराधी हैं। जो नामाश्रयी हैं वे चिद् रस का आस्वाद कर जड़ सारहीन वस्तु का त्याग कर देते हैं। उनके द्वारा पापाचरण सम्भव नहीं है। बार-बार पाप कर पुनः नाम ग्रहण करना केवल शठता है। यह सबसे गम्भीर अपराध है।

कई लोगों का मानना है कि यज्ञ, दान, धर्म, तीर्थयात्रादि क्रियायें जिस प्रकार शुभकर हैं, उसी प्रकार नाम भी शुभकर है। इस तरह की भावना रखना ही नामापराध है। नाम सर्वदा चेतनस्वरूप है, बाकी सारी क्रियाएँ जड़ स्वरूपा हैं। जो चैतन्य

रसस्वरूप नाम के साथ अन्यान्य क्रियाओं की तुलना करना है, वह प्राकृत नाम रस का आस्वाद नहीं ले सकता। हीरा एवं काँच में जो भेद है, वही नाम एवं अन्यान्य शुभकर्मों में भेद है।

जो अश्रद्ध व्यक्ति को हरिनाम का उपदेश करते हैं, वे नामपराधी हैं। जिस प्रकार सूअर को मोती दिया जाय, तो मोती का अपमान होगा, उसी प्रकार नाम के प्रति अश्रद्धावान को नामोपदेश करना नाम का अपमान ही होगा। श्रद्धा होने से ही नामोपदेश करना उचित है। नाम माहात्म्य श्रवण करके भी जो इसमें ऐकान्तिक श्रद्धा नहीं करता, वह नामापराधी है। कलिजन निस्तारक श्री श्री महाप्रभु चैतन्य देव जीवों के विविध क्लेशों को देखकर दयार्द्र होकर उपदेश करते हैं :–

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिनो मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।
(श्री शिक्षाष्टक)

स्वयं को तृण से भी तुच्छ एवं वृक्ष से भी सहिष्णु होकर स्वयं अमानी होकर दूसरों को मानदेते हुए सर्वदा श्री हरि का कीर्तन करना चाहिए। अपराध शून्य होकर हरिनाम ग्रहण करना ही इस वचन का मुख्य तात्पर्य है। जो स्वयं को हीन (लघु) मानता है, वह कभी भी साधु निंदा नहीं कर सकता; अन्यान्य देवताओं में भेद बुद्धि नहीं रख सकता; गुरू के प्रति अवज्ञा का भाव नहीं रख सकता; सत्शास्त्रों की निंदा नहीं कर सकता; हरिनाम के माहात्म्य का यथार्थ ज्ञान रखता है; हरिनाम में अर्थवाद नहीं करता, अर्थात् हरि शब्द से शुष्क तर्कों के आधार पर निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन नहीं करता; नामाश्रय करके पापाचार नहीं करता; अश्रद्धावान को नामोपदेश नहीं करता एवं नाम में कभी भी अविश्वास नहीं करता है। यदि कोई उसका अपकार करता है, तब भी वह दूसरों का उपकार ही करता है। वह सबका उपकार करके भी स्वयं को कर्त्ता नहीं मानता। वह स्वयं को सबका दास मानकर ही सबकी सेवा करता है।

इस प्रकार अधिकारी व्यक्ति के मुख से जब हरिनाम उच्चारित होता है, तब वही हरिनाम मायाविकार रूप अन्धकार से शान्ति देता है। अतएव हे महात्मागण। आप सब अपराध शून्य होकर ही हरिनाम ग्रहण करे। हरिनाम के सिवा जीव का कोई अन्य संबल नहीं है। इस दुस्तर संसार सागर में ज्ञान-कर्म का आश्रय ग्रहण करने से मानो तृण पकड़कर पार करने जैसा निरर्थक है। हरिनाम रूपी महापोत का आश्रय ग्रहण कर यह संसार सागर निश्चित रूप से पार हुआ जा सकता है।

जय जय हरिनाम चिदानन्दामृत धाम
परतत्व अक्षर-आकार।
निजजने कृपा करि नामरूपे अवतरि
जीवे दया करिले अपार।।
जय हरि कृष्ण नाम जगजन सुविश्राम
सर्वजनमानसरंजन।।
मुनिवृन्द निरंतर ये नामेर समादर
करिगाय भरिया वदन।।
उहे कृष्ण नामाक्षर तुमि सर्वशक्तिधर
जीवेर कल्याण वितरण।।
तोमा विना भवसिन्धु उद्धारिते नाहि बंधु
आसियाछ जीव उध्यारणे।।
आद्दे ताप जीवे यत हुये दीन अकिंचन
नाहि देखि अन्य प्रतिकार।।
भव स्वल्प स्फूर्ति पाय उग्रताप दूरे जाय
लिग भंग हय अनायास।।
भक्तिविनोद कय जय हरिनाम जय
पड़े थाकि तुया-पद आशे।।

नाम भजन प्रणाली

अप्राकृत तत्व का स्वरूप बोध ही स्वरूप सिद्धि कहा जाता है। इसी को प्रकृत संबध ज्ञान कहते हैं। संबध ज्ञान होने से ही प्रेम-अनुशीलन रूप अभिधेय एवं प्रेम प्राप्ति रूप प्रयोजन का ज्ञान होता है। कृष्ण का चिद्धाम चिन्मय नाम, चिन्मय गुण एवं चिन्मयी लीला, प्रेम के अंतर्गत विशिष्ट प्रयोजन का हेतु है। प्रश्नोपनिषद में भगवन्नाम-भजन का स्वरूप निर्णित है। इस जगत में नामरूप में ही कृष्ण का अवतार सर्वजन स्वीकृत है। अक्षरात्मक होते हुए भी नाम अप्राकृत कृष्णावतार विशेष है। नाम-नामी में अभेदत्व का विचार करने पर सिद्ध होता है कि गो लोक से नाम रूप में ही श्रीकृष्ण अवतीर्य हुए हैं। अतएव कृष्ण नाम ही श्रीकृष्ण का प्रथम परिचायक है। कृष्ण प्राप्ति की संकल्पात्मक कामना से ही जीव कृष्णनाम ग्रहण करता है। श्री स्वरूपदामोदर गोस्वामी के प्रिय शिष्य श्री गोपाल गुरु गोस्वामी 'हरिनामार्थ निर्णय' में लिखते हैं :–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
रटन्ति हेलयावापि वे कृतार्थाः न संशयः।।
(अग्नि पुराण)

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
ये रटन्ति, हीदं नाम सर्वं पापं तरन्ति ते।।
(ब्रह्माण्ड पुराण)

नरसंग्रहकारकः श्री कृष्णचैतन्यमहाप्रभुः।
श्री चैतन्य मुखोद्जीर्णा हरे कृष्णे ति वर्णकाः।
मज्जयन्तो जगत्प्रेमी विजयन्तां तदाद्वयाः।।

अतएव श्रीमन्महाप्रभु ने 'चैतन्य चरितामृत' एवं 'चैतन्य भागवत' में "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।" उस बत्तीस अक्षरों में सोलह नाम माला ग्रहण कर जीव को नाम शिक्षा दि है। श्री गोपालगुरु गो स्वामी इन सोलह नामों का इस प्रकार अर्थ करते हैं :– 'हरि' शब्द के उच्चारण मात्र से दुष्ट व्यक्ति के समस्त पाप दूर हो जाते हैं। अग्नि जिस प्रकार अनिच्छापूर्वक स्पर्श करने पर भी जलाती है, उसी प्रकार हरि बोलने मात्र से सभी

पापों का दहन होता है। यह हरिनाम चिद्घनानन्द रूप भगवत्तत्व का प्रकाश कर अविद्या एवं तज्जन्य कार्यो का ध्वंस कर देता है। स्थावर जंगम, सभी त्रिताप शान्ति हेतु हरिनाम का आश्रय लेते हैं। अथवा अप्राकृत सद्गुणश्रवण कथन द्वारा सबका मन हर लेते हैं। भगवान अपने कोटिकंदर्प लावण्य स्वरूप द्वारा समस्त लोकों एवं अवतारों का मन हर लेते हैं। हरि शब्द के संबोधन मे ही हरे शब्द का प्रयोग किया गया है। ब्रह्म संहिता के मत में स्वरूप प्रेम वात्सल्य द्वारा हरि के मन को जो हरण कर लेती है वे ही "हरा" शब्द से अभिहित वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिका ने नाम का सम्बोधन "हरे" के रूप में है। आगमों के मत मे "कृष्ण" शब्द "कृष्" धातु में 'ण' प्रत्यय लगाने से सम्पन्न होता है। इसी लिए यह आकर्षक आनन्दस्वरूप एवं ब्रह्म है। आगम मे कहा गया है – हे देवि! 'रा' शब्दोच्चारण से सभी पातक दूर हो जाते है एवं वे पुन: प्रवेश न कर सकें इसीलिए मकार रूप कपाट युक्त 'राम' नाम उच्चारण किया जाता है। पुराणों में कहा गया है कि जो वैदग्धिसारसर्वस्वमूर्तिलीलाधिदेवता राधा सहित नित्य रम्यमाण हैं, वे ही श्रीकृष्ण 'राम' शब्द से अभिहित हैं।

इस 'हरे कृष्ण' नामावली का प्रेमारूरूक्ष भक्तगण कीर्तन स्मरण करते हैं। कीर्तन – स्मरण काल में नामार्थ द्वारा अप्राकृत स्वरूप का निरंतर अनुशीलन करते हैं। इस अनुशीलन के द्वारा क्रमश: चित्त निर्मल होता जाता है। नामाभास के द्वारा शुद्धचित्त में स्वभावत: अप्राकृत नाम का उदय होता है। नाम ग्रहण कारी दो प्रकार के होते हैं अर्थात् साधक एवं सिद्ध। साधकों की भी दो श्रेणियाँ हैं – प्राथमिक एवं प्रात्यहिक। प्राथमिक साधन नामकीर्तन नाम संख्या द्वारा वृद्धि करते-करते कीर्तन में निरंतरता का लाभ करते हैं एवं नैरंतर्य लाभ के बाद वे प्रात्यहिक अवस्था को प्राप्त होते हैं। प्राथमिक साधकों को अविद्यापित्तोपतप्त रहने के कारण नाम में रुचि नहीं रहती। निरतर तुलसी माला से नाम संख्या योग करते-करते नाम के प्रति उनकें अल्प आदर उत्पन्न होता है। इस अवस्था में नामोच्चारण के विना रहना उन्हें अच्छा नहीं लगता। आदर सहित निरंतर नाम स्मरण करने से प्रेमास्पद अवस्था प्राप्त होती है। तत्काल पाप, पाप बीज, सभी पापवासना एवं अविद्या अभिनिवेश जन्य वासनायें दूर हो जाती हैं। प्राथमिक अवस्था में निरपराध होकर नाम ग्रहण करना नितान्त आवश्यक है। यह केवल दु:संग त्याग एवं साधु संग एवं सद्धर्म

शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। प्राथमिक अवस्था को पार करने पर क्रमश: जीव में दया उत्पन्न होने लगती है। कर्म, ज्ञान या योगादिक साधनों की प्रयोजनीयता समाप्त हो जाती है। यह हेय साधन इस अवस्था में प्रबल भी रहते हैं तो शरीर यात्रा निर्वाह द्वारा वे साधक का उपकार ही करते हैं। निर्विन्धिनी मति होने पर उनके संग नामकीर्तन करते हुए स्वल्पकाल में ही चित्त शुद्धि एवं अविद्या का नाश हो जाता है। अविद्या जितनी नष्ट होती है, उतना ही वैराग्य प्रकट हो चित्त को निर्मल कर देता है। समस्त विद्वन्मण्डली में इसकी बार-बार परीक्षा हो चुकी है। नामग्रहण के समय नाम के स्वरूप अर्थ का आदरपूर्वक अनुशीलन कर कृष्ण के निकट प्रार्थना करने से ही भजन में गति होती है। ऐसा नहीं करने से कर्मी ज्ञानी के समान बहुत जन्म यूँही व्यतीत हो जायेंगे।

(श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जगत गुरु श्रील प्रभुपाद के उपदेश।)

सब समय कृष्ण कीर्तन के बिना जीवन में और कोई कृत्य नहीं है। श्रीकृष्ण के स्वरूप, नाम का स्वरूप एवं निज स्वरूप से अवगत होकर श्रीकृष्ण कीर्तन में ही श्री चैतन्य का नाम कीर्तन अंतर्निहित है। जिस समय तक विन्दु मात्र भी मन एवं देह का आभास स्मृति बनी रहती है तब तक कीर्तन नहीं होता। साधु गुरु वैष्णवों की कृपा से संबंध ज्ञानोदय स्वरूप देहादि वासना की शिथिलता तथा श्री नाम प्रभु का जीव के हृदय में प्रादुर्भाव होता है। तब हृदय से बोलता है, जिह्वाग्र से चलता है एवं शब्द रूप में नाम अनुक्षण नृत्य करता है।

श्रील प्रभुपाद

हम सब जगत में बहुत दिन नहीं रह पायेंगे। हरिनाम कीर्तन करते-करते इस देह का त्याग करना ही इसकी सार्थकता है।

श्रील प्रभुपाद

"हरिकीर्तन महाध्यान है। सत्ययुग में अल्पध्यान की बात प्रचलित थी। किन्तु उससे उदार हृदय गौर सुन्दर का दर्शन तो सम्भव नहीं था। इसी कारण महाध्यान में दोष प्रविष्ट हो गया एवं त्रेता में यज्ञ का प्रवर्तन हुआ। उसी कारण कलिकाल में महायज्ञ संकीर्तन को विधिरूप में स्वीकृति है। यज्ञ मे दोषारोपित होने से द्वापर मे अर्चन केवल श्रीनामकीर्तन था। जिस प्रकार सारे चिकित्सा से निराश रोगी को प्रबल औषधि खिलाई जाती है उसी रूप मे कलिकाल की चरम अवस्था में नामकीर्तन की व्यवस्था की गई है। श्रीनामकीर्तन में सर्वशक्ति समन्वित है। कीर्तन ही महाध्यान, महायज्ञ एवं महार्च्चन है।"

श्रील प्रभुपाद

श्रीनाम का स्वरूप - साक्षात् सच्चिदानन्दविग्रह उनकी कृपा से ही जीव शुद्ध तत्व में प्रवेश प्राप्त करता है। सरल हृदय चिन्मय आँखों से, सेवोन्मुख जिह्वा से, श्रवणोन्मुख कानों से, कृष्णेन्द्रिय प्रीति वांहामूल इन्द्रियों में अखिल रसामृत सिन्धु श्रीकृष्ण की स्फूर्ति लाभ करते हैं।

श्रील प्रभुपाद

श्रीकृष्ण एवं श्रीकृष्ण नाम दो पृथक वस्तुएं नहीं हैं। भिन्नता से प्रतीत एवं विभिन्न भावों से ग्राह्य होने से कृष्ण का रूप गुण, परिकर वैशिष्ट्य एवं लीला सब कुछ श्रीकृष्ण ही हैं।

श्रील प्रभुपाद

नाम संकीर्तन से सर्व सिद्धि होती है, तथापि भक्तिमय जीवनयात्रा के लिए कुछ विशेष अर्चना करने से उपकार ही होता है।

श्रील भक्ति विनोद

कृष्ण बोलो संग चलो
यही भिक्षा चाहे।
राधाकृष्ण सभी बोलो
बोलो सब भाई।
जीव कृष्ण दास, यही एक विश्वास
भजन करने से और दुःख नहीं।
राधा कृष्ण बोलो सभी भाई।

प्रभु के कृपा से भाई मात्र यही भिक्षा मांगू।
बोलो कृष्ण, भजो कृष्ण करो कृष्ण शिक्षा।।

कृष्ण बल सगेंचलो
एई मात्र भिक्षा चाई
राधा कृष्ण बल बलरे सबाई।।
जीव कृष्णदास एई बिश्वास
करले तो आर दुखः नाई
राधा कृष्ण बल बलरे सबाई।।
प्रभुर कृपाय भाई मांगी एई भिक्षा
बल कृष्ण, भज कृष्ण, कर कृष्ण शिक्षा।।

नित्य सेवित : श्री लक्ष्मी नृसिंहदेव

वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
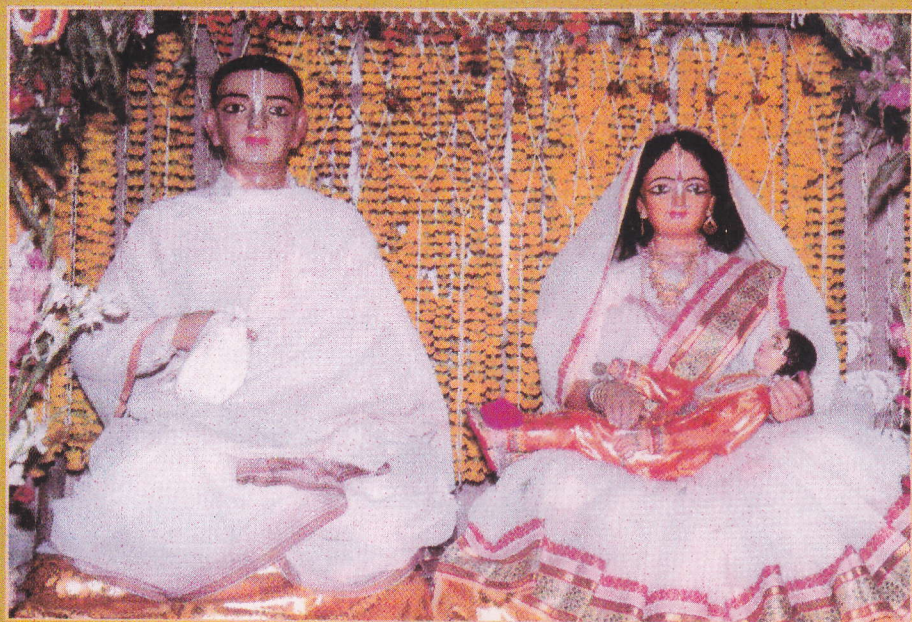
नित्य सेवित विग्रह : श्री जगन्नाथ मिश्र, श्रीमती शची देवी एवं शिशु निमाई

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।